श्रीवल्लभोपाध्याय प्रणीता

मातृका-श्लोकमाला

-सं. म. विनयसागर

स्वर एवं व्यंजनों पर आधारित अक्षर ही अक्षरमय जगत है। सारी सृष्टि ही अक्षरमय है। यही अक्षर मातृका, अक्षरमाला, वर्णमाला और भाषा में बारहखड़ी इत्यादि शब्दों से अभिहित है। स्वर १६ माने गये है - अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः और व्यंजन ३३ माने गये है :- क्, ख्, ग्, घ्, ङ्, च्, छ्, ज्, झ्, ञ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्, त्, थ्, द्, ध्, न्, प्, फ्, ब्, भ्, म्, य्, र्, ल्, व्, श्, ष्, स्, ह्। तथा संयुक्ताक्षर अनेक होते हुए भी तीन ही ग्रहण किये जाते है:-क्ष्, त्र्, ज्ञ्। ये ही अक्षर संयुक्त होकर बीजाक्षर मन्त्र भी कहलाते है। वर्तमान समय में हिन्दी भाषा लिपि में टंकण एवं मुद्रण आदि की सुविधा की दृष्टि से ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, इन तीनों वर्णों का प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता है।

मातृका से सम्बन्धित संस्कृत भाषा में रचित जैन लेखकों की कुछ ही कृतियाँ प्राप्त होती हैं, जिनमें आचार्य सिद्धसेनरचित सिद्धमातृका सर्वोत्तम कृति है। श्री श्रीवल्लभोपाध्याय प्रणीत मातृका-श्लोक-माला भी इसी परम्परा की रचना है।

कवि परिचय - खरतरगच्छीय प्रथम श्री जिनराजसूरि के शिष्य प्रसिद्ध विद्वान् जयसागरोपाध्याय की परम्परा में श्रीवल्लभोपाध्याय हुए हैं।

जयसागरोपाध्याय की शिष्यसन्तति में उपाध्याय रत्नचन्द्र > उपाध्याय भक्तिलाभ > उपाध्याय चारित्रसार > उपाध्याय भानुमेरु > उपाध्याय ज्ञानविमल के शिष्य श्रीवल्लभ थे। श्रीवल्लभ के टीका-ग्रन्थों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है ये राजस्थान प्रदेश के निवासी थे। श्रीवल्लभ की 'वल्लभनन्दी' को देखते हुए १६३० एवं १६४० के मध्य में श्री जिनचन्द्रसूरि ने इनको दीक्षित किया होगा। इनकी प्रथम कृति शिलोञ्छनाममाला टीका सम्वत् १६५४ की है। वि.सं. १६५५ में रचित ओकेशोपकेशपदद्वयदशार्थी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में इनके नाम के साथ 'गणि' पद का प्रयोग मिलता है और १६६१ में रचित कृतियों में वाचनाचार्य पद का उल्लेख भी मिलता है । संघपति शिवासोमजी द्वारा शंत्रुजय तीर्थ में निर्मापित चौमुखजी की टूंक (सम्वत् १६७५) की प्रतिष्ठा में श्रीवल्लभ सम्मिलित थे । विजयदेवमाहात्म्य की रचना सम्वत् १६८७ के आस-पास हुई थी । अतः इनका साहित्य-सृजन काल १६५४ से १६८७ तक माना जा सकता है ।

इनकी रचनाओं को देखते हुए यह स्पष्ट है कि श्रीवल्लभ महाकवि थे, उद्भट वैयाकरणी थे, प्रौढ़ साहित्यकार थे और अनेकार्थादि-कोशों के अधिकृत विद्वान थे । इनके द्वारा निर्मित साहित्य इस प्रकार है :-

मौलिक ग्रन्थ :

१. विजयदेवमाहात्म्य-महाकाव्य[१], रचना-समय अनुमानतः १६८७

२. अरजिनस्तव[२] (सहस्रदलकमलगर्भितचित्रकाव्य) स्वोपज्ञटीका-सहित, रचना-समय १६५५ से १६७० का मध्य

३. विद्वत्प्रबोध स्वोपज्ञ टीका सहित[३]- रचना-समय संभवत. १६५५ और १६६० के मध्य, रचनास्थान बलभद्रपुर (बालोतरा)

४. संघपति रूपजी-वंश-प्रशस्ति-काव्य[४] र० सं० १६७५ के बाद

५. मातृकाश्लोकमाला, र० सं० १६५५, बीकानेर

६. चतुर्दशस्वरस्थापनवादस्थल[५]

७. ओकेशोपकेशपदद्वयदशार्थी[६], र० सं० १६५५ विक्रमनगर (बीकानेर)

८. खरतर पद नवार्थी[७]

टीका ग्रन्थ :

१. शिलोञ्छनाममाला-टीका[८], र० सं० १६५४, नागपुर (नागोर)

२. शेषसंग्रहनाममाला दीपिका, र० सं० १६५४, बीकानेर

३. अभिधानचिन्तामणिनाममाला - 'सारोद्धार' - टीका, र० सं० १६६७, जोधपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. निघण्टुशेषनाममाला टीका[९], र० सं० १६६७ के पूर्व

५. सिद्धहेमशब्दानुशासन टीका

६. हैमलिङ्गानुशासन-दुर्गपदप्रबोधवृत्ति[१०], र०सं० १६६१, जोधपुर

७. सारस्वतप्रयोगनिर्णय (१६७४ से १६९०)

८. 'केशाः' पदव्याख्या[११]

९. विदग्धमुखमण्डन टीका

१०. अजितनाथ स्तुति टीका[१२], र० सं० १६६९, जोधपुर

११. शान्तिनाथविषमार्थस्तुति टीका[१३]

१२. 'खचरानन पश्य सखे खचर' पद्यस्य अर्थत्रिकम्[१४]

१३. 'यामाता' पद्यस्य अर्थपञ्चकम्[१५]

भाषा की लघु कृति :

१. चतुर्दशगुणस्थान-स्वाध्याय[१६]

२. स्थूलभद्र इकत्रीसा

गच्छ-संघर्ष-युग में भी स्वयं खरतरगच्छ के होते हुए तपागच्छ के प्रसिद्ध आचार्य विजयदेवसूरि के गुण-गौरव को सम्मान के साथ अंकित करते हुए विजयदेवमाहात्म्य की रचना करना कवि की उदार दृष्टि का परिचायक है। अरजिनस्तव को देखने से स्पष्ट है कि कवि चित्रकाव्यों के अद्भुत मर्मज्ञ थे। इस कृति में कवि ने कमल के मध्य में १००० रकार का प्रयोग करते हुए अपना विशिष्ट चित्रकाव्यकौशल दिखाया है।

प्रस्तुत कृति का सारांश :

यह कृति दो परिच्छेदों में विभक्त है। प्रथम परिच्छेद में २४ तीर्थंकरो का वर्णन किया गया है और द्वितीय परिच्छेद में त्रिदेव आदि देवताओं तथा पदार्थों का वर्णन किया गया है। अंत में छः पद्यों में रचना-प्रशस्ति देते हुए इसकी रचना का समय दिया है।

प्रथम परिच्छेद के प्रथम श्लोक में भगवान शान्तिनाथ को प्रणाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कर विद्वानों के बुद्धि रूपी कमल को विकसित करने वाले सूर्य के समान और काव्य-कला में शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करने के लिए मातृका-श्लोक-माला रचना की प्रतिज्ञा की है । दूसरे पद्य में कहा गया है कि प्रथम परिच्छेद में २४ तीर्थंकरो का वर्णन करूँगा और दूसरे परिच्छेद में भिन्न-भिन्न पदार्थों का वर्णन करूँगा । तीसरे पद्य में अकार में अर्हत् जिनेश्वर का वर्णन कर पद्य ४ से २७ तक आकार से लेकर झ व्यंजन तक भगवान् आदिनाथ से प्रारम्भ कर भगवान् महावीर पर्यन्त २४ जिनेश्वरों का वर्णन किया गया है ।

दूसरे परिच्छेद में ञ से प्रारम्भ कर ह ळ और क्ष व्यंजनाक्षर का प्रयोग करते हुए २६ पद्यों में विष्णु, शिव, ब्रह्मा, कार्तिकेय, गणेश, सूर्य, चन्द्र, दिग्पाल, इन्द्र, शेष-शायी विष्णु, मुनिपति, राम, लक्ष्मण, समुद्र, जिनेश्वर एवं तीर्थंकर आदि को लक्ष्य बना कर रचना की गई है ।

इस कृति का यह वैशिष्ट्य है कि प्रत्येक पद्य के चारों चरणों में प्रथमाक्षर में उसी स्वर अथवा व्यंजन का प्रयोग अलंकारिक भाषा में किया गया है ।

कवि ने व्यंजनाक्षरों में त्र और ज्ञ का प्रयोग नहीं किया है । इसके स्थान पर ळ और क्ष का प्रयोग किया है । यह ळ डिंगल का या मराठी का है अथवा अन्य किसी का वाचक है, निर्णय अपेक्षित है ।

छन्दःकौशल :

इस लघु कृति में विविध छन्दों का प्रयोग करने से यह स्पष्ट है कि कवि का छन्दःशास्त्र पर भी पूर्ण अधिकार था । इस कृति में निम्न छन्दों का प्रयोग हुआ है :

प्रथम परिच्छेद : शार्दूलविक्रीडित १, अनुष्टुप् २, उपेन्द्रवज्रा ३, ४, ७, ९, इन्द्रवज्रा ४, ६, ८, १०, १२, १३, १४, १५, १६, २४, २५, २७, मालिनी ११, २१, दोधक १७, १८, २३, सुन्दरी (हरिणप्लुता) १९, २०, २६, स्वागता २२ ।

द्वितीय परिच्छेद : उपेन्द्रवज्रा १, ३, ६, १७, २३, इन्द्रवज्रा २,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५, ८, ९, १८, २३, २५, २६ सुन्दरी (हरिणप्लुता) ७, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, २०, २४, मालिनी, १९, २१, वसन्ततिलका-इन्द्रवज्रा ४ (यहाँ कवि ने प्रथम चरण वसन्ततिलका का दिया है, और शेष तीनों चरण इन्द्रवज्रा में दिये है ।)

रचनाप्रशस्ति - आर्याछन्द १, २, ४, ५ अनुष्टुप् ३, ६

हस्त लिखित प्रति :

श्री लालभाई दलपतभाई, भारतीय संस्कृत विद्या मन्दिर, अहमदाबाद मुनिश्री पुण्यविजयजी के संग्रह में ग्रन्थांक २८८८ पर सुरक्षित है । प्रति टिप्पणसहित शुद्धतम है । लेखनकाल नहीं दिया है, किन्तु लिपि और कागज को देखते हुए १७वीं शताब्दी में रचना-काल के आस-पास ही लिखी गई है ।

टिप्पणियाँ -

१. मुनि जिनविजयजी द्वारा सम्पादित होकर 'जैन साहित्य संशोधक समिति' अहमदाबाद द्वारा सन् १९२८ में प्रकाशित
२. मेरे द्वारा सम्पादित होकर विस्तृत भूमिका के साथ सुमती सदन कोटा से सन् १९५३ में प्रकाशित
३. महावीर स्तोत्र संग्रह पुस्तक में जिनदत्तसूरि ज्ञान भण्डार सूरत से प्रकाशित
४. मेरे द्वारा सम्पादित होकर राजस्थान राज्य विद्या प्रतिष्ठान सन् १९५३ प्रकाशित
८. मेरे द्वारा सम्पादित होकर लालभाई दलपतभाई भारतीय विद्या संस्कृति मन्दिर, अहमदाबाद से सन् १९७४ में प्रकाशित
९. लालभाई दलपतभाई भारतीय विद्या संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से सन् १९७४ में प्रकाशित
१०. अमीसोम जैन ग्रन्थमाला, बम्बई द्वारा सन् १९४० में प्रकाशित

५, ६, ७, ११, १२, १३, १४, १५, १६. प्रेस कॉपी मेरे संग्रह में ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाचकश्रीश्रीवल्लभगणिप्रणीता

श्री मातृका-श्लोकमाला ।

चतुर्विंशतिजिनवर्णनो नाम प्रथमः परिच्छेदः

॥ ॐ ह्रीं नमः ॥ ऐँ नमः ॥

श्रीशान्ति प्रणिपत्य नित्यमनघं संनम्रकम्रामरा-
धीशाभ्यर्चितपूजनीयचरणाम्भोजं जनानन्दनम् ।
विद्वद्बुद्धिसरोजसूर्यसदृशीं **श्रीश्लोकमाला**महं,
वक्ष्ये काव्यकलाशुसिद्धय इमां **श्रीमातृकायाः** शुभम् ॥१॥
चतुर्विंशतिसार्वाणां प्रथमे ह्यत्राऽस्ति वर्णना ।
भिन्नभिन्नपदार्थानां परिच्छेदे द्वितीयके ॥२॥

तद्यथा-

अनेकदेवासुरपूजनीया, **अ**हर्निशं रान्तु सुखानि सार्वाः ।
अगण्यपुण्याम्बुधयः शरण्या, **अ**निष्टदुष्कर्महरा वरेथाः(ण्याः) ॥३॥
आतङ्कदोषक्षयकारि धर्मं, **आ**दीश्वरो यच्छतु मङ्गलानि ।
आश्चर्यकारी भविनां जिनेश, **आ**भासिता येन महोदयश्रीः ॥४॥
इलातलख्यातयशा वरौजा, **इ**तामयः श्रीअजिताह्वसार्वः ।
इतो भवात् पातु जगत्प्रतीत, **इ**भाङ्कशाली गुणरत्नमाली ॥५॥
ईष्टे त्रिलोक्यां किल तीर्थराज, **ई**शो मुनीनां स हि शम्भवाख्यः ।
ईर्ष्यालुतामुक्तविशुद्धचेता, **ई**ड्यस्सतां वैरिगणस्य जेता ॥६॥
उदारतारङ्गितसाधुचेता, **उ**पास्यतां भव्यजना जिनेशः ।
उपासना यस्य ददाति पद्मां, **उ**पासकानामभिनन्दनाह्वः ? ॥७॥
ऊर्ज्जेन बुद्धेर्विदितप्रतिष्ठ-**ऊ**र्ज्जस्वि धीमत्प्रतिवादिगोष्ठ्याम् ।
ऊर्ध्वं गतं यद्यश एधते वै, **ऊ**र्ज्वान् क्रियाच्छं सुमतिर्जिनस्सः ॥८॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऋद्धिप्रदाता सततं त्रिलोक्या, ऋध्यन्महासंयमरम्यलक्ष्म्या ।
ऋंजस्व[1] पुण्यानि विशां वरश्रीः ऋश्येङ्ग[2] पद्मप्रभतीर्थनाथ ॥९॥

ॠकारमन्त्रेण सुजप्त एष, ॠदायकः[3] स्यान्नितरां जनानाम् ।
*ॠभूत्करैरर्चितपादपद्म, ॠतामृतश्रीश्च सुपार्श्वसार्वः ॥१०॥

[4]लृतकनतजनानां मङ्गलानि प्रदेया
लृफिडकपटहारी[5] सार्वचन्द्रप्रभ त्वम् ।
लृतनययतिराज्या[6] गीतविख्यातकीर्त्ति-
र्लृरिव[7] विशदतेजाः केवलज्ञानभास्वान् ॥११॥

लॄभ्विन्द्रभूमीन्द्रकृतोपचर्य[8], लॄकारमन्त्रोपमनामधेयः ।
लॄलोकचक्रस्य[9] ददातु बुद्धी-र्लॄजातसेव्यः[10] सुविधिः स्वयम्भूः ॥१२॥

एधित्वगम्भीर[11] उदारचेता, एनांसि नाशं नयतान्मुनीनाम् ।
एषोऽब्जसौम्याननशीतलेश, एकाग्रसद्ध्यानमना जिनेशः ॥१३॥

ऐश्वर्यवृद्ध्यै भवताद्धतां हा, ऐरावताङ्कोपमवर्ण्यवर्णः ।
ऐन्द्रीं श्रियं योऽनुचकार सद्य, ऐश्यश्रियैकादशतीर्थपः सः ॥१४॥

ओघं मघानां विदधातु देवा ओजोयुता यस्य यशः स्तुवन्ति ।
ओकः कलानां च लसद्गुणाल्या, ओर्ज्जाप्रदः[12] श्रीजिनवासुपूज्यः ॥१५॥

---

१. स्तोतव्यज्ञानेत्यर्थः । २. पाकीकुरु ।
३. धनदायकः । ४. सुरसङ्घैः ।
५. प्राप्तमुक्तिश्रीः । ६. सत्यकथनलृलोकानाम् ।
७. ऋंक् गतौ, इग्रति मिथ्यात्वं प्राप्नुवन्ति ये ते ऋफिड़ाः, कुतीर्थिन इत्यर्थः । बाहुलकात् फिडक् प्रत्ययः । ततः ऋफिडादीनां ड्श्च इत्येनन ऋकारस्वरस्य लृत्वे लृफिडास्तेषां कपटं हरतीत्येवंशीलः लृफिडकपटहारी ।
८. लृः सप्तर्षीणां माता तस्यास्तनयाः पुत्रा लृतयास्ते ते यतिनश्च लृतनययतिनः सप्तर्षय इत्यर्थः, तेषां राजी श्रेणिस्तया ।
९. अग्निः । १०. सुरेन्द्रभूपतिकृतसेवः ।
११. मूर्खजनवृन्दस्य । १२. नागकुमारसेव्यः ।
१३. समुद्रगम्भीरः ।
१४. आ समन्तात् ऊर्ज्जां जीवनं प्रददाति यः स तथा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औदार्यगाम्भीर्यगुणैर्गरिष्ठः, **औ**न्नत्ययुक्तो विमलः स सार्वः ।
औद्धत्यहृद् रातु सुखं त्रिलोक्या **औ**चित्यमर्च्चा धरतीह यस्य ॥१६॥
अंतकनाशक चक्षुरचेता, **अं**चति[१५] ना तव यश्चरणौ वै ।
अंकत[१६] आशु सुखानि गतागा, **अं**युग[१७]ऽनन्त जगद्धितकारिन् ॥१७॥
अ:सम[१८] कामहतौ विहतैना **अ**:स्थितमानस[१९] नाशय दुःखम् ।
अस्तं[२०]कुवादिमतप्रतिमौजा **अ**स्तुलभायुत[२१] तीर्थपधर्मः ॥१८॥
कनककान्तिसमानशरीररुक्, **क**लुषमेष निरस्यतु मामकम् ।
करणवारणवारणसद्धरिः **क**लगुणः किल शान्तिजिनेश्वरः ॥१९॥
खनतु पापखनिं करुणानिधिः, **ख**लकलाम्बुजनाशनचन्द्रमाः ।
खरतरा अथ कुन्थुजिनेश्वरः **ख**चरनिर्ज्जरकिन्नरसंस्तुतः ॥२०॥

गगनमणिरिवेदं ज्ञानमाविष्करोति,
गणधरवरराजो वस्तुजातं हि यस्य ।
गज इव तरुवृन्दं नाशयैनो मदीयं,
गतिजितकरिराजोऽराऽऽस स त्वं प्रसद्य ॥२१॥

घोरचोररिपुभीतिविनाशी,
घट्टितामृतरसः शुभदायी ।
घट्टयाश्वनिशमिष्टसमृद्धिं,
घर्षिताऽकुशल मल्लिजिन त्वम् ॥२२॥

ङक्षरवक्रकुकर्मविनाशिन्,
[२२]**ङ**चयमाशु विधेहि विधातः ।
ङगत[२३] सुव्रततीर्थप नित्यं
ङमदरोगसुखेतरहारिन्[२४] ॥२३॥

---

१५. पूजयति । १६. प्राप्नोति ।
१७. परमब्रह्मसहित । १८. शिवतुल्यः ।
१९. आसि आश्चर्ये स्थितं मानसं यस्य स तथा तत्सम्बोधने अ:स्थितमानस ।
२०. क्षिप्त ।
२१. असः सूर्यस्य तुला यस्याः सा अस्तुला सा चासौ भा च अस्तुलभा, तया युतो यः स तथा तत्सम्बोधने अस्तुलभायुत ।
२२. ङचयं लक्ष्मीनिचयम् । २३. सिद्धिगत । २४. निन्दामदरोगदुःखनाशक ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चक्कर्तु भर्ता वरमुक्तिलक्ष्म्या
श्चच्छुभं भक्तजनस्य नित्यम् ।
चन्दद्गुणो[२५] यो नमिनाथसार्व-
श्चन्द्रोपमक्षान्तिरसाम्बुधिस्सः ॥२४॥

छिन्नच्छलो नेमिजिनेश्वरस्सः,
छिन्द्यात्तमां कर्ममलानि सद्यः ।
छेकाललोकाः स्तवनं यदीयं,
छिन्दन्त एनो रचयन्ति दिष्ट्या ॥२५॥

जयतु पार्श्वजिनस्स विधीयते, जनतया नतया च यदर्च्चनम् ।
जलदकान्तिसमानशरीररुग्, जगति दीप्तयशा जयवानहो ! ॥२६॥

झषध्वजस्थाममहीध्रवज्रो,
झरां[२६] नयत्वाऽऽश्वऽशुभानि मेऽद्य ।
झट्यन्त[२७] एनांसि च यत्प्रसत्त्या,
झगित्य[२८]थो वीरजिनेश्वरस्सः ॥२७॥

इति श्रीमातृकाश्लोकमालायां चतुर्विंशतिजिनवर्णनो नाम प्रथमः परिच्छेदः ॥१॥

---

२५. चन्दंत आह्लादयन्तो दीप्यमाना गुणा यस्य स तथा ।

२६. हानिम् ।

२७. झट्यन्ते विनश्यन्ते ।

२८. शीघ्रम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथ भिन्नभिन्नपदार्थवर्णनो नाम द्वितीयः परिच्छेदः प्रारभ्यते-

अमाप्रदः[१] पातु भवाज्जनानां,
अमन्त्रजसो हितकारकश्च ।
अ[२]उत्तरश्रीश्च नरायणस्स,
अतुल्यभालः[३] कमलाभनेत्रः ॥१॥

टङ्कोपमो[४] व्याजदृषद्विनाशे,
टङ्कोज्झितः[५] शर्म्मयुतो महेशः ।
टङ्कायुधेना[६]ऽऽह तदानव त्वं,
टङ्क्या[७] जनानां दुरितानि शीघ्रम् ॥२॥

ठत्वं[८] विधाता मम सेवकस्य,
ठग्या[९]त्तमामक्षरमन्त्रकर्त्ता ।
ठेत्यक्षरं यो वलयेति नाम्ना,
ठादेषु[१०] मन्त्रेषु समाचचक्षे ॥३॥

डिण्डीरपिण्डसमपाण्डुरशीलसेवी,*
डीनाऽमलाऽनल्पसुकल्पकल्पः[११] ।
डिम्बं[१२] सुराणां शिखिवाहनो[१३]ऽसौ,
डिम्भ्या[१४]त्तरामाऽऽहतदानवोघः ॥४॥

ढक्कादिवाद्यानि च यत्पुरस्तात्,
ढौकन्त ऋद्धा मनुजाः स्मरन्तः ।
ढुढी सुदेवी प्रददातु बुद्धी-
ढौक्या[१५] नितान्तं बुधलोकचक्रैः ॥५॥

---

* पद्येऽस्मिन् प्रथमचरणे वसान्ततिलकाया अवशिष्टे पादत्रये चेन्द्रवज्राया नियमानुसारेण च्छन्दोद्वैविध्यमिति ।

१. ज्ञानलक्ष्मीप्रदः । २. ओ गूढरूपः ।
३. जः चन्द्रार्द्धमण्डलं तत्तुल्यं भालं ललाटं यस्य स तथा ।
४. पाषाणदारकसमानः । ५. कोपरहितः । ६. खड्गायुधेन । ७. हन्यात् ।
८. ठस्य भावः ठत्वं, सठत्वमित्यर्थः । ९. हन्यात् । १०. विजयेषु ।
११. प्राप्तनिर्मलप्रचुरसुवेदाङ्गनयः । १२. भयं डमरं वा ।
१३. कार्त्तिकेयः । १४. हन्यात् । १५. सेव्या ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

णकारमन्त्राक्षरजप्तनामा,
णमा[१६]नवव्राजसभाजितांघ्रिः[१७] ।
णमां[१८] प्रदद्यात् सकलां गणेशो,
णदायकः[१९] शान्तिविधायकश्च ॥६॥

ततसुदीधितिराऽऽशु तमस्ततिं,
तरणिरेष विनाशयतु प्रगे ।
तरुणसत्किरणैररुणैररं,
तमसनाशकरः[२०] कृतपद्ममुत्[२१] ॥७॥

थं[२२] देहि सद्यो लसदुत्पलानां,
थट्टैः[२३] कलानां कलितो दिनेशात् ।
थे चोदयस्योदितः[२४] सुकान्ते,
थोरोहिणीनायक चन्द्रमस्त्वम् ॥८॥

दिक्पालमुख्यो दयितो जनानां,
दक्षक्षमानाथमनःप्रमोदी ।
दिष्टिं[२५] विशिष्टां हि सुभिक्षकारी,
दद्यात्तमां सोमसुदैवतोऽसौ ॥९॥

धनपतिः सुरनायकसेवको,
धवलरूप्यमहीध्रकृताश्रयः ।
धनद एव समृद्धिविधायको,
धरतु शर्म्म च यच्छतु सुश्रियम् ॥१०॥

---

१६. योग्य । १७. सेवित् ।
१८. स्पष्टलक्ष्मीम् । १९. ज्ञानदाता ।
२०. अन्धकारनाशकरः । २१. हर्षः ।
२२. भीत्रणम् । ? २३. सङ्घैः ।
२४. किम्भूताद्धि थेचोदयस्य उदयस्य थे पर्वते-उदयाचले इत्यर्थः उदितः उदिता इत्यर्थः ।
२५. आनन्दम् ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नलिनमोहनशोभनलोचनो,
नरवरार्चितपश्चिमदिक्पतिः ।
नयतु भद्रशतान्यमितान्यऽसौ,
नयमयोर्णवमन्दिरऋद्धिदः ॥११॥

परमपुण्यपवित्रविचित्ररुक्,
पटुगुणः प्रवणः करुणाविधौ ।
पविपतिस्त्रिदशाननिशं नतान्,
पदमसौ[२६] प्रददातु पुरन्दरः ॥१२॥

फटपदिष्ठवराङ्गवराङ्गरुक्,
फणिपतिर्धरणीं धरतात्तराम् ।
फणितकिल्विषकिल्बिषकल्मषः[२७],
फलितपेशलकोमललोचनः[२८] ॥१३॥

बहुलपुष्कलमङ्गलमण्डलीं,
बलवतां बलतां[२९] परमेश्वरः ।
बत[३०] सतां यतिनां नमतां सदा,
बहुकलाकलितः कुशलाशयः ॥१४॥

भगवतोऽभ्युपपत्तिवशा[३१]च्छुभं,
भवतु पुण्यवतः परमात्मनः ।
भवत[३२] एधित विश्वलसद्यशो,
भयभरोज्झित भूमिपते प्रभो ॥१५॥

मुनिपतिर्नयवात्रयतादसौ,
मतशुभानि[३३] शुभानि[३४] जनस्य वै ।
मनुजपूजितसच्चरणाम्बुजो,
मथितमन्मथदुस्सहदर्परुक् ॥१६॥

---

२६. त्राणम् । २७. नाशितरोगाऽपराधपातकः ।
२८. फलितानि विस्तीर्णानि अक्षीणि द्विसहस्रत्वात्, पेशलानि मनोहराणि कोमलानि मृदूनि लोचनानि यस्य स तथा ।
२९. दत्ताम् । ३०. हर्षेण । ३१. प्रसादात् । ३२. तव ।
३३. सम्मतभद्राणि । ३४. भव्यानि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यमो हि दिक्पालवरो विभाति,
यथार्हदण्डं प्रददान एषः ।
यथा पतिः पूर्वदिशः सुरेन्द्रो,
यशोयुगीशश्च तथा ह्यपाच्याः ॥१७॥

रामो नृपेन्द्रः प्रणताङ्गभाजां,
रम्यां रमां रातु मनः प्रसन्नः ।
राजव्रजैस्सेवित एधितर्द्धी,
रत्नाकरः सद्गुणरत्नराज्याः ॥१८॥

लुलितमिलितपृथ्वीपालभालाभिसेव्यो,
ललितचतुरराज्या रञ्जितः स्पष्टवाग्भिः ।
लसितसितगुणौघो लक्ष्मणाख्यः कुमारो,
लयनयचययुक्तस्तुष्टिपुष्ट्यै समस्तु ॥१९॥

वनमिदं प्रतिभाति महत्तरं,
वरफलालियुतैस्तरुभिः शुभम् ।
विजितनन्दननन्दनसत्प्रभं,
विविधपक्षिमधुव्रतसेवितम् ॥२०॥

शमयतु जनतायाः पातकानां प्रतानं,
शमरसऋतियुक्तै[३५]र्योगिभिः सेवनीयः ।
शमनशमनकामोत्तुङ्गमातङ्गसिंहः,
शिशिरकिरणचञ्चच्छुक्लिमा नष्टकष्टः ॥२१॥

षण्ढत्ववल्लीपरशुः सुधर्मः,
षड्वर्गसंसर्गवियुक्त एषः ।
षण्डालिका[३६]सङ्गमदोषवादी,
षिड्गेतरै राजति पुम्भिरर्क्यः ॥२२॥

समुद्र एष प्रतिभाति नित्यं,
सरित्स्फुरत्नीरसुसङ्गमाढ्यः ।

---

३५. कल्याणसहितैः ।
३६. कामुकस्त्री ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदा निशानाथसुवृद्धवेलः
सतां जनानां स्तवनीय इष्टः ॥२३॥

हतकुतीर्थिमतं भगवन्मतं,
हरतु दुर्गतिपातकपातकम् ।
हरिहरादिसुरैरजितप्रभं,
हसितचन्द्रसुचन्द्रगुणैर्युतम् ॥२४॥

ल्लख्यात[३७]कीर्त्तिर्गुरुरेष जीया-
ल्लब्धप्रतिष्ठः प्रतिवादिगोष्ठ्याम् ।
ल्लानाथ[३८]शौकल्योपम यत्प्रसादा-
ल्लष्टप्रतिज्ञो भवतीह मूर्खः ॥२५॥

क्षेमङ्करैस्तीर्थकरैर्य उक्तः,
क्षामः कुतीर्थ्यालुदितैः कलङ्कैः ।
क्षिप्यात्तमामागम एष पापं,
क्षेत्रं गुणानामथ चिन्मयस्सः ॥२६॥

इति श्रीमातृकाश्लोकमालायां भिन्नभिन्नपदार्थवर्णनो नाम द्वितीयः परिच्छेदः ।

★

[प्रशस्तिः]

श्रीमद्विक्रमनगरे प्रवरे द्रव्याढ्यसभ्यजनवृन्दैः ।
इषुशरषोडशसंख्ये (१६५५) वर्षे मासे च चैत्राख्ये ॥१॥

येषां प्रथते पृथव्यां कीर्त्तिः कर्पूरपूरसंकाशा ।
पाठकमुख्या नन्द्युर्ज्ञानविमलपाठकाधीशाः ॥२॥

शिष्येण निर्म्ममे येषां **मातृकाश्लोकमालिका** ।
वाचकश्रीवल्लभाह्वेनाऽऽत्मीयज्ञानस्य वृद्धये ॥३॥

---

३७. लोक ।
३८. ल्ला गौरी तस्या नाथो ल्लानाथो महादेव इत्यर्थः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यं वर्णं यश्च बुधः कथयत्यादौ विधाय तं विद्वान् ।
कुर्यात् सद्यः पद्यं चतुर्थु पादेषु निश्शङ्कः ॥४॥

यस्यैषा याति मुखे सुखेन लभतां स सत्वरं सभ्यः ।
विद्वज्जनेषु विद्वान् सौभाग्यौघं कवित्वञ्च ॥५॥

यस्मिन् काव्येऽस्ति यन्नाम व्यत्ययात्तस्य सत्वरम् ।
यथोक्तवर्ण्यस्य सद्व्याख्या तदा ज्ञायेत भो बुधाः ॥६॥

इति श्रीमातृकाश्लोकमालाप्रशस्तिः समाप्ता ॥

तत्समाप्तौ समाप्ता चेयं श्रीमातृकाश्लोकमाला ॥

श्रीरस्तु

लेखितं त्रैलोक्यस्यन्ताह्वेन ॥

C/o. प्राकृत भारती
१२-A. मेन मालवीयनगर,
जयपुर-३०२०१७

★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org